Chapter चौबीस

भगवान् श्रीकृष्ण

विदर्भ के तीन पुत्र थे—कुश, क्रथ तथा रोमपाद। इन तीनों में से रोमपाद का वंश फैला जिसमें बभ्रु, कृति, उशिक, चेदि तथा चैद्य नामक पुत्र एवं पौत्र हुए। ये सभी आगे चलकर राजा बने। विदर्भ के पुत्र क्रथ के कुन्ति नामक पुत्र हुआ जिसके वंश में वृष्णि, निर्वृति, दशार्ह, व्योम, जीमूत, विकृति, भीमरथ, नवरथ, दशरथ, शकुनि, करम्भि, देवरात, देवक्षत्र, मधु, कुरुवश, अनु, पुरुहोत्र, अयु तथा सात्वत हुए। सात्वत के सात पुत्र थे जिनमें से देवावृध एक था और उसके पुत्र का नाम बभ्रु था। सात्वत के दूसरे पुत्र महाभोज से भोजवंश चला। सात्वत के अन्य पुत्र वृष्णि के पुत्र का नाम युधाजित था। युधाजित से अनमित्र तथा शिनि हुए और अनमित्र से निघ्न तथा एक अन्य शिनि उत्पन्न हुए। शिनि के बाद क्रम से सत्यक, युयुधान, जय, कुणि तथा युगन्धर हुए। अनमित्र का एक अन्य पुत्र वृष्णि था। वृष्णि से श्वफल्क हुआ जिससे अक्रूर तथा अन्य बारह पुत्र उत्पन्न हुए। अक्रूर के दो पुत्र हुए देववान तथा उपदेव। अन्धक का पुत्र कुकुर था जिसके वंशज वह्नि, विलोमा, कपोतरोमा, अनु, अन्धक, दुन्दुभि, अविद्योत, पुनर्वसु तथा आहुक हुए। आहुक के दो पुत्र थे—देवक तथा उग्रसेन। देवक के चार पुत्र हुए—देववान, उपदेव, सुदेव तथा देववर्धन। उसके सात कन्याएँ भी थीं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, तथा देवकी। वसुदेव ने इन सातों कन्याओं से व्याह किया। उग्रसेन के नौ पुत्र थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोघ, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि तथा तुष्टिमान। उसके पाँच पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू तथा राष्ट्रपालिका थे। वसुदेव के छोटे भाइयों ने उग्रसेन की सारी पुत्रियों से ब्याह कर लिया।

चित्ररथ के पुत्र विदूरथ के शूर नाम का पुत्र हुआ। शूर के दस और पुत्र थे जिनमें वसुदेव मुख्य था। शूर ने अपनी पाँच पुत्रियों में से एक पुत्री पृथा को अपने मित्र कुन्ति को दे दिया इसलिए वह कुन्ती भी कहलाई। उसने कुमारी रहते हुए कर्ण नामक पुत्र को जन्म दिया, और बाद में उसने महाराज पाण्डु से विवाह कर लिया।

वृद्धशर्मा ने शूर की पुत्री श्रुतदेवा से विवाह किया जिसके गर्भ से दन्तवक्र का जन्म हुआ। धृष्टकेतु ने शूर की पुत्री श्रुतकीर्ति से विवाह किया जिससे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। जयसेन ने शूर की पुत्री राजाधिदेवी के

साथ विवाह किया। चेदि देश के राजा दमघोष ने शूर की पुत्री श्रुतश्रवा से शादी की जिससे शिशुपाल ने जन्म लिया।

देवभाग ने कंसा के गर्भ से चित्रकेतु तथा बृहद्बल को जन्म दिया। देवश्रवा ने कंसावती के गर्भ से सुवीर तथा इषुमान को उत्पन्न किया। कंक ने कंका से बक, सत्यजित तथा पुरुजित को उत्पन्न किया। सृञ्जय ने राष्ट्रपालिका से वृष तथा दुर्मर्षण को जन्म दिया। श्यामक ने शूरभूमि से हरिकेश तथा हिरण्याक्ष को जन्म दिया। वत्सक ने मिश्रकेशी से वृक को उत्पन्न किया। वृक के तीन पुत्र हुए—तक्ष, पुष्कर तथा शाल। समीक से सुमित्र तथा अर्जुनपाल हुए और आनक से ऋतधामा तथा जय हुए।

वसुदेव के अनेक पत्नियाँ थी जिनमें से देवकी तथा रोहिणी प्रमुख थीं। रोहिणी के गर्भ से बलदेव ने जन्म लिया। इनके अतिरिक्त गद, शारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत तथा अन्य पुत्र भी हुए। वसुदेव की अन्य पत्नियों से भी अनेक पुत्र हुए। देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले आठवें पुत्र भगवान् थे जिन्होंने असुरों के बोझ से सारे संसार का उद्धार किया। यह अध्याय भगवान् वासुदेव के महिमागान के साथ समाप्त होता है।

श्रीशुक उवाच
तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ।
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तस्याम्—उस लड़की से; विदर्भः—विदर्भ ने; अजनयत्—जन्म दिया; पुत्रौ—दो पुत्रों को; नाम्ना—नामक; कुश-क्रथौ—कुश तथा क्रथ; तृतीयम्—तथा तीसरे पुत्र; रोमपादम् च—रोमपाद को भी; विदर्भ-कुल-नन्दनम्—विदर्भ वंश का प्रिय।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने पिता द्वारा लाई गई उस लड़की के गर्भ से विदर्भ को तीन पुत्र प्राप्त हुए—कुश, क्रथ तथा रोमपाद। रोमपाद विदर्भ कुल का अत्यन्त प्रिय था।

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ।
उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृपाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

रोमपाद-सुतः—रोमपाद का पुत्र; बभ्रुः—बभ्रु; बभ्रोः—बभ्रु से; कृतिः—कृति; अजायत—उत्पन्न हुआ; उशिकः—उशिक; तत्-सुतः—कृति का पुत्र; तस्मात्—उससे; चेदिः—चेदि; चैद्य—चैद्य (दमघोष); आदयः—इत्यादि; नृपाः—राजा।

रोमपाद का पुत्र बभ्रु हुआ जिससे कृति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। कृति का पुत्र उशिक हुआ

और उशिक का पुत्र चेदि था। चेदि से चैद्य तथा अन्य राजा पुत्र उत्पन्न हुए।

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्वृष्णिस्तस्याथ निर्वृतिः ।
ततो दशार्हो नाम्नाभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३॥
जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ।
ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४॥

शब्दार्थ

क्रथस्य—क्रथ का; कुन्तिः—कुन्ति; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; वृष्णिः—वृष्णि; तस्य—उसका; अथ—तब; निर्वृतिः—निर्वृति; ततः—उससे; दशार्हः—दशार्ह; नाम्ना—नामक; अभूत्—उत्पन्न हुआ; तस्य—उसका; व्योमः—व्योम; सुतः—पुत्र; ततः—उससे; जीमूतः—जीमूत; विकृतिः—विकृति; तस्य—उसका; यस्य—जिसका (विकृति का); भीमरथः—भीमरथ; सुतः—पुत्र; ततः—उससे (भीमरथ); नवरथः—नवरथ; पुत्रः—पुत्र; जातः—उत्पन्न हुआ; दशरथः—दशरथ; ततः—उससे।

क्रथ का पुत्र कुन्ति, कुन्ति का पुत्र वृष्णि, वृष्णि का निर्वृति, निर्वृति का दशार्ह, दशार्ह का व्योम, व्योम का जीमूत, जीमूत का विकृति, विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ तथा नवरथ का पुत्र दशरथ हुआ।

करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ।
देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५॥

शब्दार्थ

करम्भिः—करम्भि; शकुनेः—शकुनि से; पुत्रः—पुत्र; देवरातः—देवरात; तत्-आत्मजः—उसका पुत्र (करम्भि); देवक्षत्रः—देवक्षत्र; ततः—तत्पश्चात्; तस्य—उसका; मधुः—मधु; कुरुवशात्—कुरुवश से; अनुः—अनु।

दशरथ का पुत्र शकुनि हुआ और शकुनि का पुत्र करम्भि था। करम्भि का पुत्र देवरात हुआ जिसका पुत्र देवक्षत्र था। देवक्षत्र का पुत्र मधु था और उसका पुत्र कुरुवश था जिसके अनु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ।
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६॥
सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ।
भजमानस्य निम्लोचिः किङ्कणो धृष्टिरेव च ॥ ७॥
एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ।
शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८॥

शब्दार्थ

पुरुहोत्रः—पुरुहोत्र; तु—निस्सन्देह; अनोः—अनु का; पुत्रः—पुत्र; तस्य—पुरुहोत्र का; अयुः—अयु; सात्वतः—सात्वत; ततः—उससे (अयु); भजमानः—भजमान; भजिः—भजि; दिव्यः—दिव्य; वृष्णिः—वृष्णि; देवावृधः—देवावृध; अन्धकः—अन्धक; सात्वतस्य—सात्वत के; सुताः—पुत्र; सप्त—सात; महाभोजः च—तथा महाभोज; मारिष—हे महान् राजा; भजमानस्य—भजमान के; निम्लोचिः—निम्लोचि; किङ्कणः—किंकण; धृष्टिः—धृष्टि; एव—निस्सन्देह; च—भी; एकस्याम्—एक पत्नी से; आत्मजाः—पुत्र; पत्न्याम्—पत्नी से; अन्यस्याम्—दूसरी; च—भी; त्रयः—तीन; सुताः—पुत्र; शताजित्—शताजित; च—भी; सहस्राजित्—सहस्राजित; अयुताजित्—अयुताजित; इति—इस प्रकार; प्रभो—हे राजा।

अनु का पुत्र पुरुहोत्र हुआ जिसके पुत्र अयु का पुत्र सात्वत था। हे महान् आर्य राजा, सात्वत के सात पुत्र थे—भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक तथा महाभोज। भजमान की एक पत्नी से निम्लोचि, किंकण तथा धृष्टि नामक तीन पुत्र हुए और दूसरी पत्नी से शताजित, सहस्राजित तथा अयुताजित—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ।
यथैव शृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

बभ्रुः—बभ्रु; देवावृध—देवावृध; सुतः—पुत्र; तयोः—उनके; श्लोकौ—दो श्लोक; पठन्ति—पुरानी पीढ़ी के लोग सुनाते हैं; अमू—वे; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; शृणुमः—हमने सुना है; दूरात्—दूर से; सम्पश्यामः—वास्तव में देख रहे हैं; तथा—उसी तरह; अन्तिकात्—आज भी।

देवावृध का पुत्र बभ्रु था। देवावृध तथा बभ्रु से सम्बन्धित दो प्रसिद्ध प्रार्थनामय गीत हैं जिन्हें हमारे पूर्वज गाते रहे हैं और जिन्हें हमने दूर से सुना है। आज भी मैं वही गीत उनके गुणों के विषय में सुनता हूँ (क्योंकि जो पहले सुना गया है, अभी भी लगातार गाया जाता है)।

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।
महाभोजोऽतिधर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

बभ्रुः—राजा बभ्रु; श्रेष्ठः—सब राजाओं में श्रेष्ठ; मनुष्याणाम्—सारे मनुष्यों में; देवैः—देवताओं समेत; देवावृधः—राजा देवावृध; समः—समदर्शी; पुरुषाः—पुरुष; पञ्च-षष्टिः—पैसठ; च—भी; षट्-सहस्राणि—छह हजार; च—भी; अष्ट—आठ हजार; च—भी; ये—जो; अमृतत्वम्—भवबन्धन से मोक्ष; अनुप्राप्ताः—प्राप्त; बभ्रोः—बभ्रु की संगति के फलस्वरूप; देवावृधात्—तथा देवावृध की संगति से; अपि—निस्सन्देह; महाभोजः—राजा महाभोज; अति-धर्म-आत्मा—अत्यन्त धार्मिक; भोजाः—भोज नाम के राजा; आसन्—हुए; तत्-अन्वये—उसके (महाभोज के) कुल में।

''यह निश्चय हुआ कि मनुष्यों में बभ्रु सर्वश्रेष्ठ है और देवावृध देवता तुल्य है। बभ्रु तथा देवावृध की संगति से उनके सारे वंशज, जिनकी संख्या १४०६५ थी, मोक्ष के भागी हुए।'' राजा महाभोज

अत्यन्त धर्मात्मा था और उसके कुल में भोज राजा हुए।

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परन्तप ।
शिनिस्तस्यानमित्रश्च निघ्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

वृष्णेः—सात्वत पुत्र वृष्णि का; सुमित्रः—सुमित्र; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; युधाजित्—युधाजित; च—भी; परम्-तप—हे शत्रुओं का दमन करने वाले राजा; शिनिः—शिनि; तस्य—उसका; अनमित्रः—अनमित्र; च—तथा; निघ्नः—निघ्न; अभूत्—प्रकट हुआ; अनमित्रतः—अनमित्र से।

हे शत्रुओं के दमन करने वाले राजा परीक्षित, वृष्णि के पुत्र सुमित्र तथा युधाजित थे। युधाजित से शिनि तथा अनमित्र उत्पन्न हुए। अनमित्र के एक पुत्र था जिसका नाम निघ्न था।

सत्राजितः प्रसेनश्च निघ्नस्याथासतुः सुतौ ।
अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्य च सत्यकः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सत्राजितः—सत्राजित; प्रसेनः च—तथा प्रसेन; निघ्नस्य—निघ्न के पुत्र; अथ—इस प्रकार; असतुः—थे; सुतौ—दो पुत्र; अनमित्र-सुतः—अनमित्र का बेटा; यः—जो; अन्यः—दूसरा; शिनिः—शिनि; तस्य—उसका; च—भी; सत्यकः—सत्यक।

निघ्न के दो पुत्र हुए—सत्राजित तथा प्रसेन। अनमित्र का दूसरा पुत्र एक अन्य शिनि था जिसका पुत्र सत्यक था।

युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ।
युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

युयुधानः—युयुधान; सात्यकिः—सत्यक का पुत्र; वै—निस्सन्देह; जयः—जय; तस्य—उसका (युयुधान); कुणिः—कुणि; ततः—उससे (जय); युगन्धरः—युगन्धर; अनमित्रस्य—अनमित्र का पुत्र; वृष्णिः—वृष्णि; पुत्रः—पुत्र; अपरः—दूसरा; ततः—उससे।

सत्यक का पुत्र युयुधान था जिसका पुत्र जय हुआ। जय के एक पुत्र हुआ जिसका नाम कुणि था। कुणि का पुत्र युगन्धर था। अनमित्र का दूसरा पुत्र वृष्णि था।

श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ।
अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्वफल्कः—श्वफल्क; चित्ररथः च—तथा चित्ररथ; गान्दिन्याम्—गान्दिनी नामक पत्नी से; च—तथा; श्वफल्कतः—श्वफल्क से; अक्रूर—अक्रूर; प्रमुखाः—इत्यादि; आसन्—थे; पुत्राः—पुत्र; द्वादश—बारह; विश्रुताः—विख्यात।

वृष्णि से श्वफल्क तथा चित्ररथ नाम के दो पुत्र हुए। श्वफल्क की पत्नी गान्दिनी से अक्रूर उत्पन्न हुआ। अक्रूर सबसे बड़ा था, किन्तु उसके अतिरिक्त बारह पुत्र और थे जो सभी विख्यात थे।

आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ।
धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥
शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ।
तेषां स्वसा सुचाराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥
देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ।
पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

आसङ्गः—आसंग; सारमेयः—सारमेय; च—भी; मृदुरः—मृदुर; मृदुवित्—मृदुवित; गिरिः—गिरि; धर्मवृद्धः—धर्मवृद्ध; सुकर्मा—सुकर्मा; च—भी; क्षेत्रोपेक्षः—क्षेत्रोपेक्ष; अरिमर्दनः—अरिमर्दन; शत्रुघ्नः—शत्रुघ्न; गन्धमादः—गन्धमाद; च—भी; प्रतिबाहुः—प्रतिबाहु; च—तथा; द्वादश—बारह; तेषाम्—उनकी; स्वसा—बहन; सुचारा—सुचारा; आख्या—विख्यात; द्वौ—दो; अक्रूर—अक्रूर के; सुतौ—बेटे; अपि—भी; देववान्—देववान; उपदेवः च—तथा उपदेव; तथा—तत्पश्चात्; चित्ररथ-आत्मजाः—चित्ररथ के पुत्र; पृथुः विदूरथ—पृथु तथा विदूरथ; आद्याः—आदि; च—भी; बहवः—अनेक; वृष्णि-नन्दनाः—वृष्णि के पुत्र।

इन बारहों के नाम थे—आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुवित, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमाद तथा प्रतिबाहु। इन भाइयों के एक बहन भी थी जिसका नाम सुचारा था। अक्रूर के दो पुत्र हुए जिनके नाम देववान तथा उपदेव थे। चित्ररथ के पृथु, विदूरथ इत्यादि कई पुत्र थे। ये सभी वृष्णिवंशी कहलाये।

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ।
कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कुकुरः—कुकुर; भजमानः—भजमान; च—भी; शुचिः—शुचि; कम्बलबर्हिषः—कम्बलबर्हिष; कुकुरस्य—कुकुर का; सुतः—पुत्र; वह्निः—वह्नि; विलोमा—विलोमा; तनयः—पुत्र; ततः—उससे (वह्नि)।

अन्धक के चार पुत्र हुए—कुकुर, भजमान, शुचि तथा कम्बलबर्हिष। कुकुर का पुत्र वह्नि था और वह्नि का पुत्र विलोमा हुआ।

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः ।
अन्धकाद्दुन्दुभिस्तस्मादविद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कपोतरोमा—कपोतरोमा; तस्य—उसका (पुत्र); अनुः—अनु; सखा—मित्र; यस्य—जिसका; च—भी; तुम्बुरुः—तुम्बुरु; अन्धकात्—अन्धक (अनुपुत्र) से; दुन्दुभिः—दुन्दुभि नामक पुत्र; तस्मात्—उससे (दुन्दुभि); अविद्योतः—अविद्योत नामक पुत्र; पुनर्वसुः—पुनर्वसु नामक पुत्र।

विलोमा का पुत्र कपोतरोमा था जिसका पुत्र अनु हुआ और उसका मित्र तुम्बुरु था। अनु से अन्धक का जन्म हुआ, अन्धक से दुन्दुभि, दुन्दुभि से अविद्योत और अविद्योत से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ।
देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ।
तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥
शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; आहुकः—आहुक; च—तथा; आहुकी—आहुकी; च—भी; कन्या—पुत्री; च—भी; एव—निस्सन्देह; आहुक—आहुक के; आत्मजौ—दो पुत्र; देवकः—देवक; च—तथा; उग्रसेनः—उग्रसेन; च—भी; चत्वारः—चार; देवक-आत्मजाः—देवक के पुत्र; देववान्—देववान; उपदेवः—उपदेव; च—तथा; सुदेवः—सुदेव; देववर्धनः—देववर्धन; तेषाम्—उन सब में से; स्वसारः—बहनें; सप्त—सात; आसन्—थीं; धृतदेवा-आदयः—धृतदेवा आदि; नृप—हे राजा परीक्षित; शान्तिदेवा—शान्तिदेवा; उपदेवा—उपदेवा; च—भी; श्रीदेवा—श्रीदेवा; देवरक्षिता—देवरक्षिता; सहदेवा—सहदेवा; देवकी—देवकी; च—तथा; वसुदेवः—कृष्ण के पिता वसुदेव ने; उवाह—विवाह लिया; ताः—उनको।

पुनर्वसु के एक पुत्र आहुक तथा एक पुत्री आहुकी थी। आहुक के दो पुत्र थे—देवक तथा उग्रसेन। देवक के चार पुत्र हुए—देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देववर्धन। उसके सात कन्याएँ भी थीं जिनके नाम शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, देवकी तथा धृतदेवा थे। इनमें धृतदेवा सबसे बड़ी थी। कृष्ण के पिता वसुदेव ने इन सबों के साथ विवाह किया।

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहूस्तथा ।
राष्ट्रपालोऽथ धृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

कंसः—कंस; सुनामा—सुनामा; न्यग्रोधः—न्यग्रोध; कङ्कः—कंक; शङ्कुः—शंकु; सुहूः—सुहू; तथा—और; राष्ट्रपालः—राष्ट्रपाल; अथ—तत्पश्चात्; धृष्टिः—धृष्टि; च—भी; तुष्टिमान्—तुष्टिमान; औग्रसेनयः—उग्रसेन के पुत्र।

उग्रसेन के पुत्रों के नाम थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि तथा तुष्टिमान।

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ।
उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

कंसा—कंसा; कंसवती—कंसवती; कङ्का—कंका; शूरभू—शूरभू; राष्ट्रपालिका—राष्ट्रपालिका; उग्रसेन-दुहितरः—उग्रसेन की पुत्रियाँ; वसुदेव-अनुज—वसुदेव के छोटे भाइयों की; स्त्रियः—पत्नियाँ।

उग्रसेन की पुत्रियाँ कंसा, कंसावती, कंका, शूरभू तथा राष्ट्रपालिका थीं। वे वसुदेव के छोटे भाइयों की पत्नियाँ बनीं।

शूरो विदूरथादासीद्भजमानस्तु तत्सुतः ।
शिनिस्तस्मात्स्वयं भोजो हृदिकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

शूरः—शूर; विदूरथात्—विदूरथ से, जो चित्ररथ का पुत्र था; आसीत्—उत्पन्न हुआ; भजमानः—भजमान; तु—तथा; तत्-सुतः—उस (शूर) का पुत्र; शिनिः—शिनि; तस्मात्—उससे; स्वयम्—स्वयं; भोजः—प्रसिद्ध राजा भोज; हृदिकः—हृदिक; तत्-सुतः—उस (भोज) का पुत्र; मतः—विख्यात है।

चित्ररथ का पुत्र विदूरथ था, जिसका पुत्र शूर था और शूर का पुत्र भजमान था। भजमान का पुत्र शिनि हुआ, शिनि का पुत्र भोज था और भोज का पुत्र हृदिक था।

देवमीढः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ।
देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

देवमीढः—देवमीढ; शतधनुः—शतधनु; कृतवर्मा—कृतवर्मा; इति—इस प्रकार; तत्-सुताः—उस (हृदिक) के पुत्र; देवमीढस्य—देवमीढ का; शूरस्य—शूर का; मारिषा—मारिषा; नाम—नामक; पत्नी—पत्नी; अभूत्—थी।

हृदिक के तीन पुत्र हुए—देवमीढ, शतधनु तथा कृतवर्मा। देवमीढ का पुत्र शूर था जिसकी पत्नी का नाम मारिषा था।

तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ।
वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥
सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥
वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥

राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ।
कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उससे (मारिषा) से; सः—उस (शूर) ने; जनयाम् आस—उत्पन्न किया; दश—दस; पुत्रान्—पुत्रों को; अकल्मषान्—निष्कलंक; वसुदेवम्—वसुदेव को; देवभागम्—देवभाग को; देवश्रवसम्—देवश्रवा को; आनकम्—आनक को; सृञ्जयम्—सृञ्जय को; श्यामकम्—श्यामक; कङ्कम्—कंक; शमीकम्—शमीक; वत्सकम्—वत्सक; वृकम्—वृक को; देव-दुन्दुभयः—देवताओं द्वारा दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजाई गईं; आनकाः—एक प्रकार की दुन्दुभी; यस्य—जिसके; जन्मनि—जन्म होने पर; वसुदेवम्—वसुदेव को; हरेः—भगवान् का; स्थानम्—स्थान; वदन्ति—लोग कहते हैं; आनकदुन्दुभिम्—आनक-दुन्दुभि; पृथा—पृथा; च—तथा; श्रुतदेवा—श्रुतदेवा; च—भी; श्रुतकीर्तिः—श्रुतकीर्ति; श्रुतश्रवाः—श्रुतश्रवा; राजाधिदेवी—राजाधिदेवी; च—भी; एतेषाम्—इन सबों की; भगिन्यः—बहनें; पञ्च—पाँच; कन्यकाः—शूर की पुत्रियाँ; कुन्तेः—कुन्ति का; सख्युः—मित्र; पिता—पिता; शूरः—शूर; हि—निस्सन्देह; अपुत्रस्य—पुत्रविहीन; पृथाम्—पृथा को; अदात्—दे दिया।

राजा शूर को अपनी पत्नी मारिषा से वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक तथा वृक नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये विशुद्ध पवित्र पुरुष थे। जब वसुदेव का जन्म हुआ था तो देवताओं ने स्वर्ग से दुन्दुभियां बजाई थीं। इसीलिए वसुदेव का नाम आनक-दुन्दुभि पड़ गया। इन्होंने भगवान् कृष्ण के प्राकट्य के लिए समुचित स्थान प्रदान किया। शूर के पाँच कन्याएँ भी जन्मीं, जिनके नाम थे पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी। ये वसुदेव की बहनें थीं। शूर ने अपने मित्र कुन्ति को अपनी पुत्री पृथा दे दी क्योंकि उसके कोई सन्तान नहीं थी; इसलिए पृथा का दूसरा नाम कुन्ती था।

साप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ।
तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सा—उसने (पृथा ने); आप—प्राप्त किया; दुर्वाससः—दुर्वासा मुनि से; विद्याम्—योगशक्ति; देव-हूतीम्—किसी भी देवता का आवाहन करने की; प्रतोषितात्—प्रसन्न होकर; तस्याः—उस (योगशक्ति) से; वीर्य—प्रभाव; परीक्ष-अर्थम्—परीक्षा करने के लिए; आजुहाव—आवाहित किया; रविम्—सूर्यदेव को; शुचिः—पवित्र (पृथा)।

एक बार जब दुर्वासा पृथा के पिता कुन्ति के घर पर अतिथि बने तो पृथा ने अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न कर लिया। अतएव उसे ऐसी योगशक्ति प्राप्त हुई जिससे वह किसी भी देवता का आवाहन कर सकती थी। पवित्र कुन्ती ने इस योगशक्ति के प्रभाव की परीक्षा करने के लिए तुरन्त ही सूर्यदेव का आवाहन किया।

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ।

प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; एव—निस्सन्देह; उपागतम्—(अपने समक्ष) प्रकट हुआ; देवम्—सूर्यदेव को; वीक्ष्य—देखकर; विस्मित-मानसा—अत्यधिक चकित; प्रत्यय-अर्थम्—योग की शक्ति को देखने के लिए; प्रयुक्ता—मैंने प्रयोग किया है; मे—मुझे; याहि—कृपया लौट जाइये; देव—हे देवता; क्षमस्व—क्षमा कीजिये; मे—मुझको।

ज्योंही कुन्ती ने सूर्यदेव का आवाहन किया वे तुरन्त उसके समक्ष प्रकट हो गये। इस पर वह अत्यधिक चकित हो गई। उसने सूर्यदेव से कहा ''मैं तो इस योगशक्ति के प्रभाव की परीक्षा ही कर रही थी। खेद है कि मैंने आपको व्यर्थ ही बुलाया है। कृपया वापस जाएँ और मुझे क्षमा कर दें।''

अमोघं देवसन्दर्शमादधे त्वयि चात्मजम् ।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अमोघम्—व्यर्थ न होने वाला; देव-सन्दर्शम्—देवताओं से भेंट; आदधे—मैं (वीर्य) दूँगा; त्वयि—तुममें; च—भी; आत्मजम्—पुत्र; योनिः—योनि मार्ग; यथा—जिस तरह; न—नहीं; दुष्येत—दूषित हो; कर्ता—व्यवस्था करूँगा; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; सुमध्यमे—हे सुन्दरी।

सूर्यदेव ने कहा : हे सुन्दरी पृथा, देवताओं से तुम्हारी भेंट व्यर्थ नहीं जा सकती। अतएव मैं तुम्हारे गर्भ में वीर्य स्थापित करता हूँ जिससे तुम एक पुत्र उत्पन्न कर सको। मैं तुम्हारे कौमार्य को अक्षत रखने की व्यवस्था कर दूँगा क्योंकि तुम अब भी अविवाहिता लड़की हो।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार यदि विवाह के पूर्व कोई लड़की शिशु को जन्म दे तो उसके साथ कोई विवाह नहीं करता। इसीलिए जब सूर्यदेव ने पृथा के समक्ष उपस्थित होकर उसे शिशु देना चाहा तो पृथा को उलझन हुई क्योंकि वह कुमारी थी। किन्तु सूर्यदेव ने उसके कौमार्य को अक्षत रखने के लिए उसे ऐसा शिशु देने की व्यवस्था की जो कान से उत्पन्न हुआ। इसीलिए इसका नाम कर्ण पड़ा। यह प्रथा है कि अक्षतयोनि रहते लड़की विवाही जाय अर्थात् उसका कौमार्य भंग न हो। विवाह के पूर्व कुमारी को शिशु उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ।
सद्यः कुमारः सञ्ज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तस्याम्—उसमें (पृथा में); सः—उसने (सूर्यदेव ने); आधाय—वीर्य स्थापित करके; गर्भम्—गर्भ; सूर्यः—सूर्यदेव; दिवम्—स्वर्गलोक को; गतः—लौट गये; सद्यः—तुरन्त; कुमारः—बालक; सञ्जज्ञे—उत्पन्न हुआ; द्वितीयः—दूसरा; इव—सदृश; भास्करः—सूर्यदेव।

यह कहकर सूर्यदेव ने पृथा के गर्भ में अपना वीर्य स्थापित किया और वे स्वर्गलोक वापस चले गये। उसके तुरन्त बाद कुन्ती ने एक पुत्र को जन्म दिया जो दूसरे सूर्य की तरह था।

तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ।
प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस बालक को; सा—उसने (कुन्ती ने); अत्यजत्—छोड़ दिया; नदी-तोये—नदी के जल में; कृच्छ्रात्—पश्चाताप सहित; लोकस्य—लोगों के; बिभ्यती—डरते हुए; प्रपितामहः—(तुम्हारे) परबाबा; ताम्—उसको (कुन्ती को); उवाह—विवाह किया; पाण्डुः—पाण्डु ने; वै—निस्सन्देह; सत्य-विक्रमः—अत्यन्त पवित्र तथा पराक्रमी।

चूँकि कुन्ती लोगों की आलोचनाओं से भयभीत थी अतएव उसे बड़ी कठिनाई से पुत्र-स्नेह छोड़ना पड़ा। अनचाहे उसने बालक को एक मंजूषा (टोकरी) में बन्द करके नदी के जल में प्रवाहित कर दिया। हे महाराज परीक्षित, बाद में पवित्र तथा पराक्रमी तुम्हारे बाबा पाण्डु ने कुन्ती से विवाह कर लिया।

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ।
यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

श्रुतदेवाम्—कुन्ती की बहन श्रुतदेवा को; तु—लेकिन; कारूषः—करूष का राजा; वृद्धशर्मा—वृद्धशर्मा ने; समग्रहीत्—विवाह लिया; यस्याम्—जिससे; अभूत्—उत्पन्न हुआ; दन्तवक्रः—दन्तवक्र; ऋषि-शप्तः—सनक तथा सनातन ऋषियों द्वारा शाप प्राप्त; दितेः—दिति का; सुतः—पुत्र।

करूष के राजा वृद्धशर्मा ने कुन्ती की बहन श्रुतदेवा के साथ विवाह किया और उसके गर्भ से दन्तवक्र उत्पन्न हुआ। सनकादि मुनियों से शापित होने के कारण दन्तवक्र पूर्वजन्म में दिति के पुत्र हिरण्याक्ष के रूप में उत्पन्न हुआ था।

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ।
सन्तर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

कैकेयः—केकय देश का राजा; धृष्टकेतुः—धृष्टकेतु ने; च—भी; श्रुतकीर्तिम्—कुन्ती की बहन श्रुतकीर्ति को; अविन्दत—ब्याह लिया; सन्तर्दन-आदयः—सन्तर्दन इत्यादि; तस्याम्—उससे (श्रुतकीर्ति से); पञ्च—पाँच; आसन्—हुए; कैकयाः—केकय के राजा के; सुताः—पुत्र।

केकयराज धृष्टकेतु ने कुन्ती की अन्य बहिन श्रुतकीर्ति के साथ विवाह किया। श्रुतकीर्ति के सन्तर्दन इत्यादि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए।

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ।
दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

राजाधिदेव्याम्—राजाधिदेवी (कुन्ती की दूसरी बहन) से; आवन्त्यौ—दो पुत्र (विन्द तथा अनुविन्द); जयसेनः—जयसेन; अजनिष्ट—जन्म दिया; ह—भूतकाल में; दमघोषः—दमघोष ने; चेदि-राजः—चेदि राज्य का राजा; श्रुतश्रवसम्—श्रुतश्रवा को; अग्रहीत्—ब्याह लिया।

कुन्ती की अन्य बहन राजाधिदेवी के गर्भ से जयसेन ने विन्द तथा अनुविन्द नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। इसी प्रकार चेदि राज्य के राजा दमघोष ने श्रुतश्रवा से विवाह किया।

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः ।
देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

शिशुपालः—शिशुपाल; सुतः—पुत्र; तस्याः—श्रुतश्रवा का; कथितः—पहले ही कहा जा चुका है (सातवें स्कन्ध में); तस्य—उसका; सम्भवः—जन्म; देवभागस्य—वसुदेव के भाई देवभाग से; कंसायाम्—उसकी पत्नी कंसा के गर्भ से; चित्रकेतु—चित्रकेतु; बृहद्बलौ—तथा बृहद्बल।

श्रुतश्रवा का पुत्र शिशुपाल था जिसके जन्म का वर्णन पहले ही (*श्रीमद्भागवत* के सातवें स्कन्ध में) किया जा चुका है। वसुदेव के भाई देवभाग की पत्नी कंसा ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम थे चित्रकेतु तथा बृहद्बल।

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ।
बकः कङ्कात्तु कङ्कायां सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कंसवत्याम्—कंसवती के गर्भ में; देवश्रवसः—वसुदेव के भाई देवश्रवा ने; सुवीरः—सुवीर; इषुमान्—इषुमान; तथा—और; बकः—बक; कङ्कात्—कंक से; तु—निस्सन्देह; कङ्कायाम्—कंका से; सत्यजित्—सत्यजित; पुरुजित्—पुरुजित; तथा—और।

वसुदेव के भाई देवश्रवा ने कंसावती से विवाह किया जिसने सुवीर तथा इषुमान दो पुत्रों को जन्म दिया। कंक को अपनी पत्नी कंका से तीन पुत्र प्राप्त हुए जिनके नाम थे बक, सत्यजित तथा

पुरुजित।

सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ।
हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सृञ्जयः—सृंजय ने; राष्ट्रपाल्याम्—राष्ट्रपालिका नामक पत्नी से; च—तथा; वृष-दुर्मर्षण-आदिकान्—वृष, दुर्मर्षण इत्यादि को उत्पन्न किया; हरिकेश—हरिकेश; हिरण्याक्षौ—तथा हिरण्याक्ष; शूरभूम्याम्—शूरभूमि के गर्भ से; च—तथा; श्यामकः—राजा श्यामक ने।

राजा सृञ्जय के उसकी पत्नी राष्ट्रपालिका से वृष, दुर्मर्षण इत्यादि पुत्र हुए। राजा श्यामक के उसकी पत्नी शूरभूमि से दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम थे हरिकेश तथा हिरण्याक्ष।

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा ।
तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

मिश्रकेश्याम्—मिश्रकेशी के गर्भ से; अप्सरसि—जो अप्सरा थी; वृक-आदीन्—वृक तथा अन्य पुत्र; वत्सकः—वत्सक; तथा—और; तक्ष-पुष्कर-शाल-आदीन्—तक्ष, पुष्कर, शाल इत्यादि पुत्र; दुर्वाक्ष्याम्—दुर्वाक्षी के गर्भ से; वृकः—वृक ने; आदधे—उत्पन्न किया।

तत्पश्चात् राजा वत्सक की पत्नी मिश्रकेशी नाम की अप्सरा से वृक इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए। वृक की पत्नी दुर्वाक्षी ने तक्षक, पुष्कर, शाल इत्यादि पुत्रों को जन्म दिया।

सुमित्रार्जुनपालादीन्समीकात्तु सुदामनी ।
आनकः कर्णिकायां वै ऋतधामाजयावपि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

सुमित्र—सुमित्र; अर्जुनपाल—अर्जुनपाल; आदीन्—इत्यादि; समीकात्—समीक राजा से; तु—निस्सन्देह; सुदामनी—सुदामनी के गर्भ से; आनकः—आनक; कर्णिकायाम्—कर्णिका के गर्भ से; वै—निस्सन्देह; ऋतधामा—ऋतधामा; जयौ—तथा जय; अपि—निस्सन्देह।

समीक की पत्नी सुदामिनी ने अपने गर्भ से सुमित्र, अर्जुनपाल तथा अन्य पुत्रों को जन्म दिया। राजा आनक ने अपनी पत्नी कर्णिका के गर्भ से ऋतधामा तथा जय नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ।
देवकीप्रमुखाश्चासन्पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

पौरवी—पौरवी; रोहिणी—रोहिणी; भद्रा—भद्रा; मदिरा—मदिरा; रोचना—रोचना; इला—इला; देवकी—देवकी; प्रमुखाः—प्रधान; च—तथा; आसन्—थीं; पत्न्यः—पत्नियाँ; आनकदुन्दुभेः—आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव की।

देवकी, पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला इत्यादि आनकदुन्दुभि (वसुदेव) की पत्नियाँ थीं। इनमें देवकी प्रमुख थी।

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ।
वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

बलम्—बल को; गदम्—गद को; सारणम्—सारण को; च—भी; दुर्मदम्—दुर्मद को; विपुलम्—विपुल को; ध्रुवम्—ध्रुव को; वसुदेवः—वसुदेव (कृष्ण के पिता) ने; तु—निस्सन्देह; रोहिण्याम्—रोहिणी के गर्भ से; कृत-आदीन्—कृत आदि पुत्रों को; उदपादयत्—उत्पन्न किया।

वसुदेव ने अपनी पत्नी रोहिणी के गर्भ से बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत तथा अन्य पुत्रों को उत्पन्न किया।

सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ।
पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥
नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ।
कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

सुभद्रः—सुभद्र; भद्रबाहुः—भद्रबाहु; च—तथा; दुर्मदः—दुर्मद; भद्रः—भद्र; एव—निस्सन्देह; च—भी; पौरव्याः—पौरवी नामक पत्नी के; तनयाः—पुत्र; हि—निस्सन्देह; एते—ये सभी; भूत-आद्याः—भूत इत्यादि; द्वादश—बारह; अभवन्—उत्पन्न हुए; नन्द-उपनन्द-कृतक-शूर-आद्याः—नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर इत्यादि; मदिरा-आत्मजाः—मदिरा के पुत्र; कौशल्या—कौशल्या ने; केशिनम्—केशी नामक पुत्र को; तु एकम्—एकमात्र; असूत—जन्म दिया; कुल-नन्दनम्—पुत्र को।

पौरवी के गर्भ से बारह पुत्र हुए जिनमें भूत, सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद तथा भद्र के नाम आते हैं। मदिरा के गर्भ से नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए। कौशल्या (भद्रा) ने केवल एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम था केशी।

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ।
इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

रोचनायाम्—रोचना नाम की दूसरी पत्नी से; अतः—तत्पश्चात्; जाताः—उत्पन्न हुए; हस्त—हस्त; हेमाङ्गद—हेमांगद; आदयः—इत्यादि; इलायाम्—इला नामक दूसरी पत्नी से; उरुवल्क-आदीन्—उरुवल्क इत्यादि; यदु-मुख्यान्—यदुवंश के मुख्य पुरुषों को; अजीजनत्—जन्म दिया।

वसुदेव ने रोचना नामक पत्नी से हस्त, हेमांगद इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया और इला नामक पत्नी से उरुवल्क इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया जो यदुवंश के प्रधान पुरुष थे।

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ।
शान्तिदेवात्मजा राजन्प्रशमप्रसितादयः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

विपृष्ठः—विपृष्ठ; धृतदेवायाम्—धृतदेवा नामक पत्नी के गर्भ से; एकः—एक पुत्र; आनकदुन्दुभेः—आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव के; शान्तिदेवा-आत्मजाः—दूसरी पत्नी शान्तिदेवा के पुत्र; राजन्—हे राजा परीक्षित; प्रशम-प्रसित-आदयः—प्रशम, प्रसित इत्यादि।

धृतदेवा पत्नी के गर्भ से आनकदुन्दुभि (वसुदेव) को विपृष्ठ नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वसुदेव की दूसरी पत्नी शान्तिदेवा के गर्भ से प्रशम, प्रसित इत्यादि पुत्रों ने जन्म लिया।

राजन्यकल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ।
वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट्सुताः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

राजन्य—राजन्य; कल्प—कल्प; वर्ष-आद्याः—वर्ष इत्यादि; उपदेवा-सुताः—वसुदेव की दूसरी पत्नी उपदेवा के पुत्र; दश—दस; वसु—वसु; हंस—हंस; सुवंश—सुवंश; आद्याः—इत्यादि; श्रीदेवायाः—श्रीदेवा के; तु—लेकिन; षट्—छ; सुताः—पुत्र।

वसुदेव के उपदेवा नामक पत्नी थी जिससे राजन्य, कल्प, वर्ष इत्यादि दस पुत्र उत्पन्न हुए। अन्य पत्नी श्रीदेवा से वसु, हंस, सुवंश इत्यादि छः पुत्र जन्मे।

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ।
वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देवरक्षितया—देवरक्षिता नामक पत्नी से; लब्धाः—प्राप्त किया; नव—नौ; च—भी; अत्र—यहाँ; गदा-आदयः—गदा इत्यादि; वसुदेवः—श्रील वसुदेव ने; सुतान्—पुत्रों को; अष्टौ—आठ; आदधे—उत्पन्न किया; सहदेवया—सहदेवा नामक पत्नी से।

वसुदेव के वीर्य एवं देवरक्षिता के गर्भ से नौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें गदा प्रमुख था। साक्षात् धर्मस्वरूप वसुदेव की अन्य पत्नी सहदेवा के गर्भ से श्रुत, प्रवर इत्यादि आठ पुत्र उत्पन्न हुए।

प्रवरश्रुतमुख्यांश्च साक्षाद्धर्मो वसूनिव ।
वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥
कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ।

ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं सङ्कर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४ ॥
अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ।
सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

प्रवर—प्रवर या पौवर; श्रुत—श्रुत; मुख्यान्—प्रमुख, इत्यादि; च—तथा; साक्षात्—साक्षात्; धर्मः—धर्म रूप; वसून् इव—स्वर्ग लोक के प्रमुख वसुओं की तरह; वसुदेवः—कृष्ण के पिता वसुदेव ने; तु—निस्सन्देह; देवक्याम्—देवकी के गर्भ से; अष्ट—आठ; पुत्रान्—पुत्रों को; अजीजनत्—उत्पन्न किया; कीर्तिमन्तम्—कीर्तिमान को; सुषेणम् च—तथा सुषेण को; भद्रसेनम्—भद्रसेन को; उदार-धीः—सभी योग्य; ऋजुम्—ऋजु को; सम्मर्दनम्—सम्मर्दन को; भद्रम्—भद्र को; सङ्कर्षणम्—संकर्षण को; अहि-ईश्वरम्—परम नियन्ता एवं नाग के अवतार; अष्टमः—आठवाँ; तु—लेकिन; तयोः—दोनों के (देवकी तथा वसुदेव के); आसीत्—प्रकट हुए; स्वयम् एव—साक्षात्; हरिः—भगवान्; किल—क्या कहा जाय; सुभद्रा—सुभद्रा बहिन; च—तथा; महाभागा—सौभाग्यशालिनी; तव—तुम्हारी; राजन्—हे महाराज परीक्षित; पितामही—दादी।

सहदेवा से उत्पन्न प्रवर और श्रुत इत्यादि आठों पुत्र स्वर्ग के आठों वसुओं के हूबहू अवतार थे। वसुदेव ने देवकी के गर्भ से भी आठ योग्य पुत्र उत्पन्न किये। इनमें कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र तथा शेषावतार संकर्षण सम्मिलित हैं। आठवें पुत्र साक्षात् भगवान् कृष्ण थे। परम सौभाग्यवती सुभद्रा एकमात्र कन्या तुम्हारी दादी थी।

तात्पर्य : ५५ वें श्लोक में कहा गया है—*स्वयमेव हरिः किल,* जिससे सूचित होता है कि देवकी का आठवाँ पुत्र कृष्ण भगवान् हैं। कृष्ण अवतार नहीं हैं। यद्यपि भगवान् हरि एवं उनके अवतार में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु कृष्ण आदि परम पुरुष हैं, वे पूर्ण ईश्वर हैं। अवतारों में ईश्वर की कुछ ही प्रतिशत शक्तियाँ पाई जाती हैं, किन्तु कृष्ण तो स्वयं पूर्ण ईश्वर हैं जो देवकी के आठवें पुत्र के रूप में प्रकट हुए।

यदा यदा हि धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; यदा—जब; हि—निस्सन्देह; धर्मस्य—धर्म की; क्षयः—हानि; वृद्धिः—बढ़ोतरी; च—तथा; पाप्मनः—पापकृत्यों की; तदा—तब; तु—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; ईशः—परम नियन्ता; आत्मानम्—साक्षात्, स्वयं; सृजते—अवतरित होते हैं; हरिः—भगवान् हरि।

जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब परम नियन्ता भगवान् श्री हरि स्वेच्छा से प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : जिन नियमों से भगवान् इस धरा पर अवतरित होते हैं उनकी व्याख्या इस श्लोक में हुई है। इन्हीं नियमों की व्याख्या स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.७) में भी की है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

''हे भारत! जब जब और जहाँ जहाँ धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ।''

वर्तमान युग में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में हरे कृष्ण आन्दोलन का सूत्रपात करने के लिए भगवान् प्रकट हुए हैं। वर्तमान समय में, कलियुग में लोग अत्यन्त पापी तथा मन्द-बुद्धि हैं। उन्हें आध्यात्मिक जीवन का कोई ज्ञान नहीं है और वे मानव रूप के लाभों का दुरुपयोग कुत्तों-बिल्लियों की तरह जीवन बिताने में कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में श्रीचैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण आन्दोलन का सूत्रपात किया जो कृष्ण से अभिन्न है। यदि कोई इस आन्दोलन से सम्बन्ध जोड़ता है तो वह भगवान् के सान्निध्य में आता है। लोगों को हरे कृष्ण मंत्र कीर्तन का लाभ उठाना चाहिए और इस कलियुग में उत्पन्न सारी समस्याओं से छुटकारा पाना चाहिए।

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्य—उनका (भगवान् का); जन्मनः—जन्म लेना; हेतुः—कोई कारण है; कर्मणः—या कर्म करने का; वा—अथवा; महीपते—हे राजा (परीक्षित); आत्म-मायाम्—पतितात्माओं के लिए उनका परम अनुग्रह; विना—बिना, रहित; ईशस्य—परम नियन्ता का; परस्य—भगवान् का, जो भौतिक संसार से परे है; द्रष्टुः—परमात्मा का, जो हर एक के कर्मों के साक्षी हैं; आत्मनः—हर एक के परमात्मा का।

हे महाराज परीक्षित, भगवान् के प्राकट्य, तिरोधान या कर्मों का एकमात्र कारण उनकी निजी इच्छा है, कोई अन्य कारण नहीं है। परमात्मा रूप में वे सर्वज्ञ हैं फलस्वरूप ऐसा कोई कारण नहीं जो उन्हें प्रभावित करता हो, यहाँ तक कि सकाम कर्मों के फल भी नहीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में भगवान् तथा एक सामान्य जीव का अन्तर बताया गया है। सामान्य जीव को अपने विगत कर्मों के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त होता है (*कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये*)। जीव कभी भी स्वतंत्र नहीं होता और स्वतंत्र रूप से कभी भी प्रकट नहीं हो सकता। प्रत्युत उसे अपने पूर्वकर्मों के अनुसार माया द्वारा उस पर थोपे गये शरीर को स्वीकार करना होता है। जैसा कि *भगवद्गीता* (१८.६१) में कहा गया है— *यन्त्रारूढानि मायया।* यह शरीर एक प्रकार का यंत्र है जिसे माया ने भगवान् के

निर्देशन में जीव को प्रदान किया है। अतएव जीव को अपने कर्म के अनुसार माया द्वारा प्रदत्त शरीर को स्वीकार करना पड़ता है। कोई स्वतंत्र रूप से यह नहीं कह सकता कि मुझे इस तरह का या उस तरह का शरीर दिया जाय। माया जो भी शरीर प्रदान करती है मनुष्य को वही स्वीकार करना पड़ता है। ऐसी है सामान्य जीव की स्थिति।

किन्तु जब कृष्ण अवतरित होते हैं तो वे पतितात्माओं पर अनुग्रहवश ऐसा करते हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में भगवान् कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

"मैं साधुओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का विनाश करने और धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए युग युग में अवतार लेता हूँ।" भगवान् को प्रकट होने के लिए बाध्य नहीं किया जाता। निस्सन्देह, उन्हें कोई बाध्य नहीं कर सकता क्योंकि वे भगवान् हैं। हर व्यक्ति उनके अधीन है, किन्तु वे किसी अन्य के अधीन नहीं हैं। जो मूर्ख लोग अज्ञान के कारण सोचते हैं कि वे कृष्ण के समकक्ष हैं या कृष्ण बन सकते हैं उनकी हर तरह से निन्दा की जाती है। कोई न तो कृष्ण के तुल्य है, न उनसे बढ़कर; इसीलिए उन्हें *असमौर्ध्व* कहा गया है। विश्वकोश के अनुसार माया शब्द का प्रयोग मिथ्या अहंकार के रूप में किया जाता है और दया के रूप में भी। सामान्य जीव जिस शरीर में प्रकट होता है वह उसके लिए एक प्रकार से दण्ड है। जैसा कि भगवान् *भगवद्गीता* (७.१४) में कहते हैं—*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*—मेरी इस दैवी शक्ति को, जो तीन भौतिक गुणों से बनी है, पार कर पाना दुष्कर है। लेकिन जब श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं तो माया का अर्थ होता है भक्तों तथा पतितात्माओं पर कृष्ण की कृपा या अनुग्रह। भगवान् अपनी शक्ति से हर एक का भी उद्धार कर सकते हैं चाहे वह पापी हो या पुण्यात्मा।

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी; माया-चेष्टितम्—भगवान् द्वारा बनाये गये प्रकृति के नियम; पुंसः—जीवों की; स्थिति—जीवन अवधि; उत्पत्ति—जन्म; अप्ययाय—संहार के लिए; हि—निस्सन्देह; अनुग्रहः—कृपा; तत्-निवृत्तेः—जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने के लिए विराट शक्ति की सृष्टि तथा प्राकट्य; आत्म-लाभाय—भगवद्धाम जाने के लिए; च—निस्सन्देह; इष्यते—इसी उद्देश्य से सृष्टि हुई है।.

भगवान् अपनी माया के माध्यम से इस विराट जगत के सृजन, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं जिससे वे अपनी दया से जीव का उद्धार कर सकें और जीव के जन्म, मृत्यु तथा भौतिक जीवन की अवधि को रोक सकें। इस तरह वे जीव को भगवद्धाम लौटने में सक्षम बनाते हैं।

तात्पर्य : भौतिकतावादी लोग कभी-कभी पूछते हैं कि ईश्वर ने जीवों के कष्ट के लिए भौतिक जगत की सृष्टि क्यों की? भौतिक सृष्टि निश्चय ही उन बद्धजीवों को कष्ट पहुँचाने के लिए है जो भगवान् के अंश स्वरूप हैं जैसा कि भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (१५.७) में पुष्टि की है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:।

मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

''इस बद्ध जगत में जीव मेरे नित्य अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों से कठिन संघर्ष कर रहे हैं।'' सारे जीव भगवान् के अंश रूप हैं और गुणात्मक रूप से भगवान् के ही समान हैं, किन्तु मात्रात्मक रूप से उनमें महान् अन्तर है क्योंकि भगवान् असीम हैं और जीव सीमित है। इस प्रकार भगवान् में असीम ह्लादिनी शक्ति होती है, किन्तु जीव में यह सीमित होती है। *आनन्दमयोऽभ्यासात्* (*वेदान्त सूत्र* १.१.१२)। भगवान् तथा जीव दोनों ही गुणात्मक दृष्टि से आत्मा होने के कारण शान्तिपूर्ण भोग करना चाहते हैं, किन्तु जब भगवान् का अंश दुर्भाग्यवश स्वतंत्र रूप से कृष्ण के बिना भोग करना चाहता है तो उसे भौतिक जगत में डाल दिया जाता है जहाँ वह अपना जीवन ब्रह्मा से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे एक चींटी या मल के कीट के पद तक उतार दिया जाता है। यही *मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति* है। जीवन के लिए महान् संघर्ष चलता है क्योंकि माया द्वारा बद्ध किया गया जीव पूरी तरह प्रकृति के वश में रहता है (*प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश:*)। मनुष्य अपने सीमित ज्ञान के कारण सोचता है कि वह इस भौतिक जगत में भोग कर रहा है। *मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।* वास्तव में वह प्रकृति के पूर्ण वशीभूत रहता है; फिर भी वह अपने को स्वतंत्र मानता है (*अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*)। जब वह चिन्तनपरक ज्ञान के द्वारा ऊपर उठकर ब्रह्म से तदाकार होना चाहता है तो भी यही रोग चलता रहता है। *आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत: पतन्त्यध:* (*भागवत* १०.२.३२)। उस *परं पदम्* को प्राप्त करके तथा निर्विशेष ब्रह्म में तल्लीन होकर भी वह पुन: भौतिक जगत में आ गिरता है।

इस तरह बद्धजीव इस जीवन के लिए इस जगत में महान् संघर्ष करता है; अतएव भगवान् उस पर अनुग्रह के कारण इस जगत में प्रकट होते हैं और उसे शिक्षा देते हैं। इस प्रकार भगवान् *भगवद्गीता* (४.७) में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

''हे भारत! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब-तब मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।'' असली धर्म कृष्ण की शरण ग्रहण करना है लेकिन विद्रोही जीव, कृष्ण की शरण न ग्रहण करके, कृष्ण जैसा बनने के लिए संघर्ष के दौरान अधर्म में लग जाता है। अतएव कृष्ण अनुग्रहवश जीव को अपनी असली स्थिति समझने के लिए अवसर प्रदान करने हेतु इस सृष्टि की रचना करते हैं। *भगवद्गीता* तथा ऐसे ही वैदिक ग्रंथ इसीलिए भेंट किये जाते हैं कि जीव कृष्ण से अपने सम्बन्ध को समझ सके। *वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः* (*भगवद्गीता* १५.१५)। ये सारे वैदिक ग्रंथ मनुष्य को यह समझाने के लिए हैं कि वह क्या है, उसकी असली स्थिति क्या है और भगवान् से उसका क्या सम्बन्ध है। यही *ब्रह्मजिज्ञासा* है। हर बद्ध आत्मा संघर्षरत है, किन्तु मानव जीवन उसे सबसे अच्छा अवसर प्रदान करता है कि वह अपनी स्थिति को समझे। इसीलिए इस श्लोक में *अनुग्रहस्तन्निवृत्तेः* कहा गया है जो सूचित करता है कि जन्म-मृत्यु के चक्र के मिथ्या जीवन को समाप्त हो जाना चाहिए और बद्ध आत्मा को शिक्षा दी जानी चाहिए। सृष्टि का यही प्रयोजन है।

जैसा कि नास्तिक सोचते हैं यह सृष्टि मनमाने ढंग से नहीं उत्पन्न हुई—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।

अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम्॥

''उनका कहना है कि यह जगत असत्य है, इसका कोई आधार नहीं है तथा इसका नियंत्रण करने वाला कोई ईश्वर नहीं है। यह तो कामेच्छा से उत्पन्न होता है और कामवासना के अतिरिक्त इसका कोई अन्य कारण नहीं है।'' (*भगवद्गीता* १६.८)। नास्तिक धूर्त सोचते हैं कि ईश्वर नहीं है और यह सृष्टि वैसे ही (संयोगवश) बन गई है जिस तरह स्त्री तथा पुरुष का मिलन संयोग की बात होती है और तब स्त्री गर्भवती

हो जाती है और शिशु को जन्म देती है। लेकिन वास्तव में यह तथ्य नहीं है। तथ्य तो यह है कि इस सृष्टि के पीछे एक प्रयोजन है—वह है बद्धजीव को उसकी मूल चेतना, कृष्णभावनामृत, तक लौटने का अवसर प्रदान करना जिससे वह भगवद्धाम वापस जाकर आध्यात्मिक जगत में पूर्णतया सुखी रह सके। इस जगत में बद्धजीव को अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने का अवसर प्रदान किया जाता है, किन्तु साथ ही उसे वैदिक ज्ञान द्वारा सावधान किया जाता है कि यह भौतिक संसार उसके सुख का असली स्थान नहीं है। *जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम्* (*भगवद्गीता* १३.९)। मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र को बन्द करना होगा। अतएव हर मनुष्य को चाहिए कि इस सृष्टि में आकर कृष्ण को तथा कृष्ण से अपने सम्बन्ध को समझे और इस तरह भगवद्धाम को वापस जाए।

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनै: ।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यम: ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

अक्षौहिणीनाम्—महान् सैन्य शक्ति से युक्त राजाओं की; पतिभि:—ऐसे राजाओं या सरकार के द्वारा; असुरै:—असुर (उन्हें ऐसी सैन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं रहती फिर भी वे व्यर्थ में ही सेना रखते हैं); नृप-लाञ्छनै:—जो राजा बनने योग्य नहीं हैं (यद्यपि उन्होंने किसी तरह सरकार हथिया रखी है); भुव:—पृथ्वी पर; आक्रम्यमाणाया:—एक दूसरे पर आक्रमण करने का लक्ष्य बनाकर; अभाराय—पृथ्वी से असुरों की संख्या कम करने का मार्ग प्रशस्त करते हुए; कृत-उद्यम:—उत्साही (वे सैन्य शक्ति बढ़ाने में ही सारी पूँजी व्यय कर देते हैं)।

यद्यपि सरकार हथियाने वाले असुरगण सरकारी व्यक्तियों का वेश बनाये रहते हैं, किन्तु उन्हें सरकार के कर्तव्यों का ज्ञान नहीं होता। फलस्वरूप ईश्वर की व्यवस्था से ऐसे महान् सैन्य शक्तिसम्पन्न असुर एक दूसरे से लड़ते-भिड़ते हैं और इस तरह पृथ्वी की सतह से असुरों का महान् भार घटता है। ये असुर भगवान् की इच्छा से अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाते हैं जिससे उनकी संख्या घट जाए और भक्तों को कृष्णभावनामृत में प्रगति करने का अवसर प्राप्त हो।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*। साधुजन अर्थात् भगवान् के भक्त कृष्णभावनामृत को अग्रसर करने के लिए सदैव इच्छुक रहते हैं जिससे बद्धजीव जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो सके। किन्तु असुरगण कृष्णभावनामृत आन्दोलन में बाधक बनते हैं; अतएव कृष्ण ऐसे विभिन्न असुरों को समय-समय पर परस्पर लड़ाते रहते हैं जो अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में अत्यधिक रुचि रखते हैं। सरकार अथवा राजा का कर्तव्य, बिना आवश्यकता के, सैन्य शक्ति

बढ़ाना नहीं है। उनका असली कर्तव्य तो यह देखना है कि प्रजा कृष्णभावनामृत में अग्रसर हो। इसीलिए कृष्ण *भगवद्गीता* (४.१३) में कहते हैं—*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*—प्रकृति के तीन गुणों तथा निर्दिष्ट कार्य के अनुसार मैंने मानव समाज के चार विभाग किये हैं। मनुष्यों का एक आदर्श वर्ग होना चाहिए जो प्रामाणिक ब्राह्मण हों और उन्हें सभी तरह का संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। *नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण-हिताय च।* कृष्ण को ब्राह्मण तथा गौवें अत्यन्त प्रिय हैं। ब्राह्मण कृष्णभावनामृत को अग्रसर कराने वाले हैं और गौवें शरीर को सतोगुणी बनाये रखने के लिए पर्याप्त दूध देती हैं। क्षत्रियों को तथा सरकार को ब्राह्मणों के द्वारा ही सलाह दी जानी चाहिए। वैश्यों को पर्याप्त अन्न उत्पन्न करना चाहिए और शूद्रों को, जो अपने आप कोई लाभप्रद कार्य नहीं कर सकते, चाहिए कि वे तीनों उच्च वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) की सेवा करें। यह भगवान् की व्यवस्था है जिससे बद्धजीव भौतिक जगत से छूटकर भगवद्धाम वापस जा सकें। कृष्ण द्वारा पृथ्वी पर अवतार लेने का यही प्रयोजन है (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)।

हर व्यक्ति को चाहिए कि कृष्ण के कार्यकलापों को समझे (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्*)। यदि वह इस पृथ्वी पर कृष्ण के आगमन और उनके कार्यकलापों के उद्देश्य को समझ लेता है तो वह तुरन्त मुक्त हो जाता है। यह मुक्ति ही सृष्टि-निर्माण और कृष्ण द्वारा इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करने का प्रयोजन है। असुरगण ऐसी योजना बनाने में सदैव रुचि दिखलाते हैं जिसमें लोगों को कुत्तों, बिल्लियों तथा शूकरों की तरह कठिन श्रम करना पड़े, किन्तु कृष्ण के भक्तगण तो लोगों को कृष्णभावनामृत सिखलाना चाहते हैं जिससे वे सरल जीवन से एवं कृष्णभावनाभावित प्रगति से तुष्ट रहें। यद्यपि असुरों ने उद्योग तथा कठोर श्रम के लिए अनेक योजनाओं की सृष्टि की है, जिससे लोग दिन-रात पशुओं की तरह काम करें, किन्तु सभ्यता का उद्देश्य यह नहीं है। ऐसे प्रयास तो *जगतोऽहितः* अर्थात् जनता के दुर्भाग्य के निमित्त हैं। *क्षयाय*—ऐसे कार्यों से विनाश होता है। जो भगवान् कृष्ण के प्रयोजन को समझता है उसे चाहिए कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन की महत्ता को अच्छी तरह समझे और उसमें गम्भीरता से सम्मिलित हो। मनुष्य को उग्रकर्म अर्थात् इन्द्रियतृप्ति के लिए अनावश्यक कार्य करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति* (*भागवत* ५.५.४)। लोग केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिक सुख की योजना

बनाते हैं। *मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्* (*भागवत* ७.९.४३)। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि वे सभी *विमूढ* हैं। लोग क्षणिक सुख के लिए अपनी मानव शक्ति का अपव्यय करते हैं और कृष्णभावनामृत आन्दोलन की महत्ता को न समझ कर सीधे-सादे भक्तों पर दोषारोपण करते हैं कि वे 'मस्तिष्क धुलाई' कर रहे हैं। असुरगण कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारकों पर झूठा आरोप लगा सकते हैं लेकिन कृष्ण असुरों को इस तरह लड़ाएँगे कि उनकी सारी सैन्य शक्ति उधर ही लग जाएगी और दोनों पक्ष के असुरों का संहार हो जाएगा।

कर्माण्यपरिमेयाणि मनसापि सुरेश्वरैः ।
सहसङ्कर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

कर्माणि—कार्यकलाप; अपरिमेयाणि—असीम; मनसा अपि—यहाँ तक कि मन के भीतर सोची गई योजनाओं से भी; सुर-ईश्वरैः—ब्रह्मा तथा शिव जैसे ब्रह्माण्ड के नियन्ताओं द्वारा; सह-सङ्कर्षणः—संकर्षण (बलदेव) समेत; चक्रे—सम्पन्न किया; भगवान्—भगवान्; मधु-सूदनः—मधु नामक असुर को मारने वाले ने।

भगवान् कृष्ण ने संकर्षण बलराम के सहयोग से ऐसे कार्यकलाप कर दिखलाये जो ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे पुरुषों की भी समझ के परे हैं (उदाहरणार्थ कृष्ण ने सारे संसार को राक्षसों से छुटकारा दिलाने के लिए असुरों का वध करने के लिए कुरुक्षेत्र युद्ध की आयोजना की)।

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; जनिष्यमाणानाम्—ऐसे बद्धजीवों का जो भविष्य में जन्म लेंगे; दुःख-शोक-तमः-नुदम्—उनके असीम दुख तथा शोक को कम करने के लिए जो अज्ञान के कारण उत्पन्न हैं; अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; भक्तानाम्—भक्तों के प्रति; सु-पुण्यम्—अत्यन्त पवित्र दिव्य कार्यकलाप; व्यतनोत्—विस्तार किया; यशः—महिमा या ख्याति।

भगवान् ने इस कलियुग में भविष्य में जन्म लेने वाले भक्तों पर अहैतुकी कृपा दर्शाने के लिए इस तरह से कार्य किया कि मात्र उनका स्मरण करने से मनुष्य संसार के सारे शोक-संताप से मुक्त हो जायेगा। (दूसरे शब्दों में, उन्होंने इस तरह कार्य किया जिससे सारे भावी भक्तजन भगवद्गीता में कथित कृष्णभावनामृत के उपदेशों को ग्रहण करके संसार के कष्टों से छुटकारा पा सकें)।

तात्पर्य : भक्तों की रक्षा एवं असुरों का वध—भगवान् के दोनों ही कार्य साथ-साथ चलते हैं

(*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। कृष्ण वस्तुत: साधुओं या भक्तों के उद्धार करने के लिए प्रकट होते हैं, किन्तु असुरों को मारकर वे उन पर दया भी दिखाते हैं क्योंकि जो भी भगवान् के हाथों से मरता है उसको मुक्ति मिलती है। अतएव भगवान् चाहे मारें या रक्षा करें, वे असुर तथा भक्त दोनों पर ही दयालु होते हैं।

यस्मिन्सत्कर्णपीयुषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ।
श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—धरा पर कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के इतिहास में; सत्-कर्ण-पीयुषे—जो दिव्य एवं शुद्ध कानों की आवश्यकताओं को पूरा करता है; यश:-तीर्थ-वरे—भगवान् के दिव्य कार्यकलापों का श्रवण करके पवित्र स्थानों में रखते हुए; सकृत्—एक बार ही, तुरन्त; श्रोत्र-अञ्जलि:—दिव्य संदेश का श्रवण करते हुए; उपस्पृश्य—स्पर्श करके (जिस तरह गंगाजल को); धुनुते—नष्ट कर देता है; कर्म-वासनाम्—सकाम कर्मों के लिए प्रबल इच्छा को।

शुद्ध हुए दिव्य कानों से भगवान् के यश को ग्रहण करने मात्र से भक्तगण प्रबल भौतिक इच्छाओं एवं सकाम कर्मों की व्यस्तता से तुरन्त ही मुक्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : जब भक्तगण *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में वर्णित भगवान् के कार्यकलापों का श्रवण करते हैं तो उन्हें तुरन्त ही दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिसके पश्चात् वे भौतिकतावादी कार्यकलापों में तनिक भी रुचि नहीं रखते। इस तरह उन्हें भौतिक जगत से मुक्ति मिल जाती है। लगभग हर व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिकतावादी कार्यकलापों में लगा रहता है जिससे *जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि* की प्रक्रिया बढ़ती जाती है, किन्तु भक्त मात्र *भगवद्गीता* का सन्देश सुनकर तथा *श्रीमद्भागवत* की कथाओं का स्वाद लेकर इतना शुद्ध बन जाता है कि उसे भौतिकतावादी कार्यकलापों के प्रति कोई रुचि नहीं रहती। इस समय पश्चिमी देशों में भक्तगण कृष्णभावनामृत द्वारा आकृष्ट हो रहे हैं और भौतिकतावादी कार्यकलापों से विकृष्ट हो रहे हैं; इसीलिए लोग इस आन्दोलन का विरोध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु यूरोप तथा अमरीका में भक्तों के कार्यकलापों पर कृत्रिम रोक लगाकर वे इस आन्दोलन को रोक नहीं सकते। यहाँ पर *श्रोताञ्जलिरुपस्पृश्य* शब्द बताते हैं कि भगवान् के दिव्य कार्यकलापों के श्रवण मात्र से भक्तगण इतने शुद्ध हो जाते हैं कि उन्हें सांसारिक सकाम कार्यकलापों का दूषण व्यापता नहीं। *अन्याभिलाषिताशून्यम्।* आत्मा के लिए भौतिकतावादी कार्यकलाप व्यर्थ हैं; अतएव भक्तगण ऐसे कार्यों से मुक्त हो जाते हैं। भक्तगण मुक्ति

में स्थित रहते हैं (*ब्रह्मभूयाय कल्पते*) अतएव उन्हें उनके भौतिक घरों तथा कार्यों में फिर से वापस नहीं बुलाया जा सकता।

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ।
श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥ ६३ ॥
स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

भोज—भोज; वृष्णि—तथा वृष्णि वंश द्वारा; अन्धक—तथा अन्धकों द्वारा; मधु—तथा मधुवंशियों द्वारा; शूरसेन—तथा शूरसेनों द्वारा; दशार्हकैः—तथा दशार्हकों द्वारा; श्लाघनीय—प्रशंसनीय; ईहितः—प्रयास करते हुए; शश्वत्—सदैव; कुरु-सृञ्जय-पाण्डुभिः—पांडवों, कौरवों तथा सृञ्जयों की सहायता से; स्निग्ध—स्नेहिल; स्मित—हँसी; ईक्षित—माने जाने वाले; उदारैः—उदार; वाक्यैः—वचनों द्वारा; विक्रम-लीलया—वीरतापूर्ण लीलाऐ; नृ-लोकम्—मानव समाज को; रमयाम् आस—प्रसन्न किया; मूर्त्या—अपने साकार रूप से; सर्व-अङ्ग-रम्यया—ऐसा स्वरूप जो अपने सारे शारीरिक अंगों से हर एक को प्रमुदित करता है।

भगवान् कृष्ण ने भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय तथा पाण्डु के वंशजों की सहायता से विविध कार्यकलाप सम्पन्न किये। अपनी मोहक मुस्कान, अपने स्नेहिल आचरण, अपने उपदेशों और गोवर्धन पर्वत धारण करने जैसी अलौकिक लीलाओं के द्वारा भगवान् ने अपने दिव्य शरीर में प्रकट होकर सारे मानव समाज को प्रमुदित किया।

तात्पर्य : *नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया* शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्ण आदि रूप हैं अतएव भगवान् को यहाँ पर *मूर्त्या* शब्द से बतलाया गया है। मूर्ति का अर्थ है 'रूप'। कृष्ण या ईश्वर कभी निराकार नहीं होते। निराकार स्वरूप तो उनके दिव्य शरीर की अभिव्यक्ति है (*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड कोटि*)। भगवान् नराकृति हैं—मनुष्य के स्वरूप से ठीक मिलते-जुलते, किन्तु उनका स्वरूप हमसे भिन्न होता है। अतएव *सर्वांगरम्यया* शब्द बतलाते हैं कि उनके शरीर का अंग-प्रत्यंग देखने में सभी को मनोहर लगता है। उनके हँसते हुए मुख के अतिरिक्त उनके शरीर का हर अंग—उनके हाथ, उनके पाँव, उनकी छाती—भक्तों को मनोहर लगने वाले हैं जो भगवान् के सुन्दर रूप को देखते हुए कभी भी टकटकी नहीं लगा सकते।

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; आननम्—मुखमंडल; मकर-कुण्डल-चारु-कर्ण—मगर जैसे कुण्डलों से आभूषित तथा सुन्दर कानों से; भ्राजत्—चमचमाते हुए; कपोल—मस्तक; सुभगम्—सारे ऐश्वर्य की घोषणा करने वाले; स-विलास-हासम्—भोग की हँसी से युक्त; नित्य-उत्सवम्—जब भी कोई उन्हें देखता है उत्सव जैसा अनुभव होता है; न ततृपुः—सन्तुष्ट नहीं हुआ; दृशिभिः—भगवान् के स्वरूप को देखकर; पिबन्त्यः—आँखों से मानो पी रही हों; नार्यः—वृन्दावन की सारी स्त्रियाँ; नराः—सारे पुरुष भक्त; च—भी; मुदिताः—पूर्णतया सन्तुष्ट; कुपिताः—क्रुद्ध; निमेः—आँखे झपकने के कारण होनेवाले व्यवधान से; च—भी।

कृष्ण का मुखमण्डल मकराकृति के कुण्डलों से सुसज्जित है। उनके कान सुन्दर हैं, उनके गाल चमकीले हैं और उनकी हँसी हर एक को आकृष्ट करने वाली है। जो भी कृष्ण का दर्शन करता है मानो उत्सव देख रहा हो। उनका मुख तथा शरीर देखने में हर एक को पूर्णतया तुष्ट करनेवाले हैं लेकिन भक्तगण स्त्रष्टा से क्रुद्ध हैं कि उन्होंने भक्तोंकी आँखों के झपकने में व्यवधान उत्पन्न कर दिया है।

तात्पर्य : जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.३) में कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

"हजारों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली है उनमें से मुश्किल से कोई एक मुझे वास्तव में जानता है।" जब तक कोई कृष्ण को समझने के योग्य नहीं होता तब तक वह पृथ्वी पर कृष्ण की उपस्थिति को समझ नहीं पाता। भोज, वृष्णि, अन्धक, पाण्डव तथा कृष्ण से सम्बन्धित अनेक अन्य राजाओं में से कृष्ण एवं वृन्दावन के निवासियों के घनिष्ठ सम्बन्ध विशेष तौर पर विचार करने योग्य हैं। इस सम्बन्ध को इस श्लोक में *नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यः* शब्दों द्वारा बतलाया गया है। विशेषतया वृन्दावन के निवासी यथा गोप, गाएँ, बछड़े, गोपियाँ, कृष्ण के माता-पिता कभी भी तुष्ट नहीं हुए यद्यपि वे कृष्ण के सुन्दर मुखमण्डल का निरन्तर दर्शन करते थे। यहाँ पर कृष्ण के दर्शन को *नित्य-उत्सव* कहा गया है। वृन्दावन के निवासी लगभग हर क्षण उनका दर्शन करते थे, किन्तु जब वे गाँव से चरागाह में गायों तथा बछड़ों को चराने जाते तो गोपियाँ अत्यन्त दुखित होती थीं क्योंकि वे देखतीं कि कृष्ण रेत पर नंगे पाँव चल रहा है और उसके चरणकमलों में कंकड़ गड़ रहे हैं जिन्हें वे अपने वक्ष:स्थलों पर इसलिए नहीं धारण करती थीं क्योंकि वे सोचती थी कि उनके वक्ष:स्थल पर्याप्त मात्रा में मृदु नहीं हैं। ऐसा सोच-सोचकर ही गोपियाँ प्रभावित हो जातीं और अपने घरों में रो पड़ती थीं। कृष्ण की

ये मित्रतुल्य गोपियाँ कृष्ण को निरन्तर देखती थीं लेकिन पलकें कृष्ण को देखने में बाधा डालती थीं अतएव वे स्रष्टा ब्रह्माजी को कोसती रहती थीं। इसलिए यहाँ पर कृष्ण के मुख की सुन्दरता का विशेष वर्णन हुआ है। नवम स्कन्ध के अन्तिम इस चौबीसवें अध्याय में हम कृष्ण के सौन्दर्य के विषय में संकेत पाते हैं। अब हम दशम स्कन्ध की ओर बढ़ रहे हैं जो कृष्ण का शीर्ष माना जाता है। सम्पूर्ण *श्रीमद्भागवत* पुराण साक्षात् कृष्ण का स्वरूप है और दशम स्कन्ध उनका मुखमंडल है। इस श्लोक से यह संकेत मिलता है कि उनका मुख कितना सुन्दर है। कृष्ण का हँसीला मुख, उनके गाल, होठ, कान के आभूषण, उनका पान चबाना—गोपियाँ इन सबका सूक्ष्म निरीक्षण करती थीं और इस तरह दिव्य आनन्द प्राप्त करती थीं यहाँ तक कि वे कभी भी कृष्ण का मुख देखकर सन्तुष्ट नहीं होती थीं अपितु वे शरीर बनाने वाले की भर्त्सना करती थीं कि उसने पलकें क्यों बनाईं जिनसे उनकी दृष्टि में रुकावट आती थी। इस तरह गोपमित्रों या कृष्ण के मुखमंडल को सजाने में रुचि रखने वाली यशोदा माता से भी बढ़कर गोपियाँ कृष्ण के मुख-सौन्दर्य की प्रशंसा करती थीं।

जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

जातः—वसुदेव के पुत्र रूप में जन्म लेकर; गतः—चला गया; पितृ-गृहात्—अपने पिता के घर से; व्रजम्—वृन्दावन को; एधित-अर्थः—वृन्दावन के पद को ऊँचा बनाने; हत्वा—मारकर; रिपून्—अनेक असुरों को; सुत-शतानि—सैकड़ों पुत्र; कृत-उरुदारः—हजारों श्रेष्ठ स्त्रियों को पत्नी रूप में स्वीकार करके; उत्पाद्य—उत्पन्न किया; तेषु—उनमें; पुरुषः—परम पुरुष, जो मनुष्य के समान है; क्रतुभिः—अनेक यज्ञों द्वारा; समीजे—पूजा की; आत्मानम्—अपनी (क्योंकि सभी यज्ञों में उन्हीं की पूजा की जाती है); आत्म-निगमम्—वेदों के अनुष्ठानों के अनुसार; प्रथयन्—वैदिक नियमों का विस्तार करते हुए; जनेषु—जनता में।

भगवान् कृष्ण लीला पुरुषोत्तम कहलाते हैं। वे वसुदेव के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, किन्तु तुरन्त ही अपने पिता का घर छोड़कर अपने विश्वासपात्र भक्तों के साथ प्रेम व्यवहार बढ़ाने के लिए वृन्दावन चले गये। वृन्दावन में उन्होंने अनेक असुरों का वध किया और फिर द्वारका लौट गये जहाँ उन्होंने वैदिक नियमों के अनुसार अनेक श्रेष्ठतम स्त्रियों के साथ विवाह किये, उनसे सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये और गृहस्थ जीवन के सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए अपनी ही पूजा के लिए अनेक यज्ञ सम्पन्न किये।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों के द्वारा कृष्ण को ही जाना जाता है। भगवान् कृष्ण ने अपने आचरण से एक आदर्श स्थापित करते हुए वेदवर्णित अनेक अनुष्ठान संपन्न किये और अनेक पत्नियों के साथ विवाह करके तथा उनसे सन्तानें उत्पन्न करके लोगों को यह दिखलाने के लिए कि वैदिक नियमों के अनुसार रहकर किस तरह सुखी बना जा सकता है, गृहस्थ जीवन के नियमों की स्थापना की। कृष्ण वैदिक यज्ञ के केन्द्रबिन्दु हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। मनुष्य जीवन में प्रगति करने के लिए मानव समाज को स्वयं भगवान् कृष्ण द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। किन्तु भगवान् कृष्ण के प्राकट्य का असली उद्देश्य तो यह दिखलाना था कि मनुष्य भगवान् के साथ प्रेम व्यापार में किस तरह भाग ले सकता है। भावावेश में प्रेम-व्यापार का आदान-प्रदान वृन्दावन में ही सम्भव है। इसीलिए वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होते ही उन्होंने तुरन्त वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। वृन्दावन में उन्होंने न केवल अपने माता-पिता, गोपों तथा गोपियों के प्रेम-व्यापार में भाग लिया अपितु अनेक असुरों को मारकर उन्हें मोक्ष प्रदान किया। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भगवान् भक्तों की रक्षा करने एवं असुरों का वध करने के लिए प्रकट होते हैं। उन्होंने अपने आचरण से इसे भलीभाँति दिखला दिया। *भगवद्गीता* में अर्जुन भगवान् को *पुरुषं शाश्वतं दिव्यम्* के रूप में समझता है। यहाँ भी हमें *उत्पाद्य तेषु पुरुषः* शब्द मिलते हैं। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि परब्रह्म एक पुरुष हैं। निराकार रूप तो उनके व्यक्तित्व का एक प्रकार है। अन्ततोगत्वा वे *पुरुष* हैं, वे निराकार नहीं हैं। वे न केवल *पुरुष* ही हैं अपितु लीलापुरुषोत्तम हैं और सभी पुरुषों में श्रेष्ठ हैं।

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७॥

शब्दार्थ

पृथ्व्याः—पृथ्वी पर; सः—वह (कृष्ण); वै—निस्सन्देह; गुरु-भरम्—बहुत बड़ा भार; क्षपयन्—पूरी तरह हटाने में; कुरूणाम्—कुरुवंशियों का; अन्तः-समुत्थ-कलिना—भाइयों में मनमुटाव द्वारा शत्रुता उत्पन्न करके; युधि—कुरुक्षेत्र के युद्ध में; भूप-चम्वः—सारे असुर राजा; दृष्ट्या—अपने दृष्टिपात से; विधूय—उनके पापकर्मों को शुद्ध करके; विजये—विजय में; जयम्—विजय;

उद्घोष्य—घोषणा करके (अर्जुन की विजय); प्रोच्य—उपदेश देकर; उद्धवाय—उद्धव को; च—भी; परम्—दिव्य; समगात्—वापस गया; स्व-धाम—अपने धाम को।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने संसार का भार कम करने के लिए पारिवारिक सदस्यों के बीच मनमुटाव उत्पन्न किया। उन्होंने अपनी चितवन मात्र से कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में सारे आसुरी राजाओं का संहार कर दिया और अर्जुन को विजयी घोषित किया। अन्त में वे उद्धव को दिव्य जीवन तथा भक्ति के विषय में उपदेश देकर अपने आदि रूप में अपने धाम को वापस चले गये।

तात्पर्य : *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* कृष्ण का कार्य कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में पूरा हुआ क्योंकि भगवान् की कृपा से अर्जुन विजयी हुआ। वह उनका महान् भक्त था और अन्य लोग भगवान् की चितवन मात्र से मारे गये जिससे उनके सारे पापकर्म धुल गये और वे *सारूप्य* को प्राप्त हो सके। अन्त में भगवान् कृष्ण ने उद्धव को भक्ति के दिव्य जीवन का उपदेश दिया और समय आने पर वे अपने धाम लौट गये। *भगवद्गीता* के रूप में भगवान् के उपदेश ज्ञान तथा वैराग्य से पूर्ण हैं। मनुष्य जीवन में ये दो बातें सीख लेनी चाहिए कि भौतिक जगत से किस प्रकार विरक्त हुआ जाय और आध्यात्मिक जीवन में किस प्रकार पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाय। यही भगवान् का प्रयोजन है (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। अपना कार्य समाप्त करने के बाद भगवान् अपने धाम गोलोक वृन्दावन लौट गये।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत 'भगवान् कृष्ण' नामक चौबीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

भुवनेश्वर (उड़ीसा, भारत) में कृष्णबलराम मन्दिर की स्थापना के अवसर पर नवम स्कंध पूर्ण हुआ।

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयत:

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध १-१२ (१८ खण्ड)

श्रीचैतन्य-चरितामृत (७ खण्ड)

भगवान् चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु

श्रीउपदेशामृत

श्रीईशोपनिषद्

अन्य लोकों की सुगम यात्रा

कृष्णभावनामृत सर्वोत्तम योगपद्धति

लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण

पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर

द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद:पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण

देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत

प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षा

रसराज श्रीकृष्ण

जीवन का स्रोत जीवन

योग की पूर्णता

जन्म-मृत्यु से परे

श्रीकृष्ण की ओर

कृष्णभावनामृत : अनुपम भेंट

राजविद्या

कृष्णभावनामृत की प्राप्ति

पुनरागमन:पुनर्जन्म का विज्ञान

गीतार गान (बंगला)

भगवद्दर्शन (मासिक पत्रिका) :संस्थापक

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,

हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई-४०००४९ 3